(2023) 1 एससीआर 823
प्रकाश नयी उर्फ सेन
बनाम
गोवा राज्य
(अपराधिक अपील सं0-2010 बर्ष 2010)
जनवरी 12.2023
(बी आर गवई एवं एम एस सुंदेरेश, न्यायमूर्तिगण)

दण्ड संहिता 1860- धारॅए-302 एवं 84 विकृतचितता का अभिवाक सिजोक्रेनिया- अभियुक्त अपीलार्थी को मृतक पीड़ित का बिना किसी पूर्व चिंतन एवं प्रकोपन के, जबकि वह लोहे के ताला प्लेट पर कार्य कर रही थी, हत्या करने के अपराध हेतु दोषसिद्व एवं दण्डित किया गया- विचारण के दौरान बचाव पक्ष ने विकृतचितता का तर्क लिया कि उन अस्पतालों मंे से एक में जहॉ कि घटना दिनांक से पूर्व अभियुक्त का इलाज चल रहा था यह दर्ज था कि अभियुक्त प्रतिक्रियाशील अवसाद के साथ ही चिड़चिड़ेपन न्यूरोसिस से ग्रसित था एवं उसमें एसिड पेप्टिक रोग व सामान्य उच्च रक्त चाप के लक्षण थे जो कि एक तरह से सिजोक्रेनिया था। विचारण के पश्चात विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को उक्त अपराध हेतु दोषसिद्व किये एवं दोषसिद्वि को उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रख गया। जिससे व्यथित होकर अभियुक्त सर्वोच्य न्यायालय गया अभिनिर्धारित निचली अदालतों ने डॉक्टरों की रिपोर्ट को स्वीकार न करके गलती की, विशेषतः तब जबकि उनमें से एक ने प्रतिपरीक्षण का सामना किया। अतः दोषसिद्वि को पूर्णतः स्थापित नहीं माना जा सका। इसके अलावा कि अभियुक्त बाद में मुकदमा का सामना करने में समर्थ हो गया उसके दोषमुक्ति के आदेश हेतु पर्याप्त है क्योंकि उसके पूर्व पागलपन का संकेत तक है विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय दोनों अपीलार्थी के दशा एवं इस तथ्य की अनदेखी करते हुए कि आरोपी पर भार सबसे अधिक है, सम्भावनाओं की अधिसम्भाव्यता को अनदेखा किया।

दंड संहिता 1860 - धारा 84 - विकृत चित्तता का अभिवाक - संहिता की धारा 84 में केवल उन कृत्यों को मान्यता दी है जिन्हें अपराध नहीं कहा जा सकता। उक्त धारा को लागू होने के लिये उस कृत्य को विकृत मानसिक स्थिति के तहत किया जाना चाहिये - विकृत चित्तता हेतु मानसिक अस्वस्थता एक अनिवार्य शर्त है - केवल चिकित्सकीय पागलपन को विकृत चित्तता नहीं कहा जा सकता - विधिक विकृत चित्तता धारा 84 के प्रयोज्यता हेतु आवश्यक है - एक व्यक्ति के अंदर उसके कार्य की प्रकृति अथवा उसकी समझ कि उक्त कृत्य गलत है या विधि के प्रतिकुल है, होना आवश्यक है -

उक्ति - एक्टसनान रियम फेसिट निसि मेंस सिट रिया - विकृत चित्तता - एक व्यक्ति विकृत चित्य है जो कि अपने कृत्य के परिणामों को समझने में अक्षम है एवं वह नहीं जानता है कि उक्त कृत्य सही अथवा गलत है - यहॉ तक कि वह यह भी नहीं समझता कि उसने वह कार्य किया है - जब ऐसी स्थिति होती है तो उसे दंड की सजा नहीं दी जा सकती है -

साक्ष्य अधिनियम 1872 - धारा 105 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 105 साबित करने का भार का अपवाद बताती है - यद्यपि सामान्य सिद्धान्त यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपने मामले को साधारण अपवाद अध्याय के अंतर्गत दंड संहिता की धारा 84 के अंतर्गत लाता है तब संभावनाओं की प्रधानता को साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के साथ पढ़ा जाना चाहिये -

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 अध्याय 25 - धारायें 329 से 339 - क्षेत्र एवं उद्देश्य - प्रावधानों में विचारण का सामना कर रहे विकृत चित्त व्यक्तियों को सुविधा प्रदान करने न केवल उनकी तर्क क्षमता के कारण बल्कि उसे विकलांग व्यक्ति के रूप में भी मानना - न्यायालय की भूमिका उपचारात्मक साधनों को खोजना एवं पूर्ण न्याय करना है -

अपील स्वीकृत करते हुये, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया. 1. धारा 84 केवल उस कार्य को मान्यता देती है जिसे एक अपराध का नाम नहीं दिया जा सकता है। यह निम्न शब्दों से शुरू होता है ''कोई बात अपराध नहीं है'' उक्त शब्द इस प्रशंसनीय प्रावधान के पीछे स्पष्ट इरादे को इंगित करता है। विकृत चित्त मस्तिष्क का अस्तित्व इसकी प्रयोज्यता हेतु अनिवार्य शर्त है। मात्र विकृत चित्त होना

ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि वह इस स्तर का न हो कि करने वाला कृत्य की प्रकृति को न जानता हो - इसी प्रकार उसके पास यह समझ नहीं हो कि उसके द्वारा किया गया कृत्य गलत है या विधि के प्रतिकूल है - यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विकृत चित्तता कार्य करते समय मौजूद होना चाहिये - {पारा 4} {828 ए-सी}

2. धारा विकृत चित्त व्यक्ति के कार्य के संबंध में बताती है - यह अक्षमता से संबंधित अत्यंत व्यापक प्रावधान है जैसा कि पूर्व में कहा गया है। इसका परीक्षण एक सामान्य प्रज्ञावान व्यक्ति के दृष्टिकोण से होती है। अतः मात्र चिकित्सकीय विकृत चित्तता को मस्तिष्क की विकृत चित्तता नहीं कहा जा सकता। ऐसा हो सकता है कि जहॉ एक व्यक्ति चिकित्सकीय विकृत चित्तता से ग्रसित हो और कोई कृत्य करे। विधिक विकृत चित्तता धारा 84 भा0 द 0 वि0 के प्रावधान को आकृष्ट करने हेतु आवश्यक है। यह आवश्यक है कि एक व्यक्ति को अपने कार्य की प्रकृति को समझने में अक्षम होना चाहिये अथवा यह समझने में अक्षम होना चाहिये कि उसका कृत्य गलत अथवा विधि के प्रतिकूल है। उपरोक्त प्रावधान निम्न मैक्सिम से लिया गया है, एक्टसनान रियम फेसिट निसि मेंस सिट रिया अर्थात् कोई कार्य तब तक गलत नहीं होता जब तक कि दूषित मस्तिष्क के साथ न किया गया हो। आपराधिक विधि का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि दोषी सिद्ध होने हेतु दुराशय का होना आवश्यक है। एक विकृत चित्त मस्तिष्क का व्यक्ति जो कि अपने कार्य के परिणामों को समझने में अक्षम हो जो यह न जानता हो कि उक्त कृत्य सही है या गलत। यहॉ तक कि वह यह भी नहीं जानता हो कि उसी ने वह उक्त कृत्य किया है ऐसी दशा में उसे दंड नहीं दिया जा सकता है। इस कृत्य को एक विचलित करने वाला मानसिक विद्रोह नहीं कहा जा सकता जो कि समाज के विरुद्ध अपराध की ओर जाता हो। वह पीड़ित की तरह सहायता हेतु खड़ा है और इसलिये उसपर अपराध के आरोप लगाकर विचारण नहीं किया जा सकता। उसकी स्थिति एक बच्चे की तरह है जो अपने कृत्य और उसके परिणामों को नहीं जानता है। {पारा 5 एवं 6} {828 सी-जी}

2. न्यायालय की संतुष्टि के लिये यह साबित करने का भार की कोई व्यक्ति ऐसा कार्य जो कि विधि विरुद्ध है, करते समय पागल है, अभियुक्त पर है। इस तरह के भार को प्रथम दृष्टतया मामले और उसकी ओर से प्रस्तुत युक्ति युक्त सामग्रियों के आधार पर उन्मोचित कर दिया जाता है। संभाव्यता की सीमा प्रमुखता में से एक है। इसी वजह से एक विकृत चित्त व्यक्ति से युक्ति युक्त संदेह के परे उसके पागलपन को साबित करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, दूसरा यह कि यह संबंधित व्यक्ति, न्यायालय, और अभियोजन की सामूहिक जिम्मेदारी है कि वे पागलपन के सबूत को विरोधी के रूप में न मानते हुये समझें। यद्यपि एक व्यक्ति को समझदार माना जाता है। एक बार जब न्यायालय के समक्ष प्र्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जाती है तो उपधारणा उन्मोचित हो जाती है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 105 जो कि साबित करने का भार के संबंध में बताती है, के अपने अपवाद हैं। हालांकि सामान्य सिद्धान्त के तौर पर सबूत का भार अभियुक्त पर होता है कि वह अपने मामले को धारा 84 भा0 द 0 वि0 के अंतर्गत लाने की बात कहता है। इसमें संभावनाओं की अधिसंभाव्यता के अवधारण को लागू करना होगा। उपरोक्त प्रावधान को साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत पढ़ा जाना चाहिये। उपरोक्त प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करने का बेहतर तरीका यह होगा कि घटना के पूर्व, दौरान एवं घटना के पष्चात व्यवहार एवं आचरण पर नजर डाली जाय। {पारस 8 एवं 9} {831 ए-डी}

3. जैसा कि भा0 द 0 वि0 की धारा 84 का अपना उल्लेखनीय उद्देश्य है, अतः अभियोजन एवं न्यायालय को अपनी अलग-अलग भूमिका निभानी है। एजेंसी को विकृत चित्तता का दावा करने वाले व्यक्ति की ओर से प्रस्तुत सामग्री की जॉच करनी होती है एवं उसे स्वयं को यह संतुष्ट करना होगा कि उसका मामला धारा 84 भा0 द 0 वि0 के दायरे में नहीं आता है। न्यायालय को अपनी भूमिका में यह संतुष्ट करना होगा कि क्या वह कार्य कठोर अर्थों में आई 0 पी0 सी0 की धारा 84 के अंतर्गत विकृत चित्त व्यक्ति द्वारा किया गया था। {पारा 10 एवं 11} {831 ई-एफ}

4. दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अध्याय 25 के क्षेत्र एवं विस्तार को नोट करने जिसमें कि वर्ष 2009 में किये गये संशोधन द्वारा शामिल किये गये प्रावधानों के मद्देनजर इस तथ्य को ध्यान रखना होगा कि आई 0 पी0 सी0 की धारा 84 के अंतर्गत मामले का विचार करते समय न्यायालय की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि न्यायालय को विचारण के दौरान मुकदमे में मित्रवत् दृष्टिकोण के पालन करने की आवश्यकता है जबकि न्यायालय को विकृत चित्त मस्तिष्क के आधार पर आरोपी को यहॉ तक कि आरोप से उन्मोचित करने की यथेष्ट शक्ति प्रदान की गयी है तो उसे मजबूती से लागू करना होगा। प्रावधानों के अंतर्गत सम्पूर्ण जिक्र एक विकृत चित्त व्यक्ति को विचारण का सामना करने की सुविधा प्रदान करना है जो कि अपनी समझ की अक्षमता के कारण है बल्कि उसे विकलांग व्यक्ति के रूप में भी मानना चाहिये। न्यायालय की भूमिका उपचारात्मक साधनों के पता लगाने एवं पूर्ण न्याय करना है। {पारा 16 एवं 17} {835 बी-डी}

सुरेन्द्र मिश्रा बनाम झारखण्ड राज्य {2011} 11 एस 0 सी0 सी0 495 {2011} 1 एस 0 सी0 आर 0 135, हरि सिंह गौंड बनाम मध्य प्रदेश राज्य {2008} 16 एस 0 सी0 सी0 109 {2008} 12 एस 0 सी0 आर 0 949

बापू उर्फ गजराज सिंह बनाम राजस्थान राज्य 2007 8 एस 0 सी0 सी0 66: {2007} 7 एस 0 सी0 आर 0 917: दहयाभाई छगनभाई ठककर बनाम गुजरात राज्य ए 0 आई 0 आर 0 1964 एस 0 सी0 1563: {1964} 7 एस 0 सी0 आर 0 361 देवीदास लोका राठोड़ बनाम महाराष्ट्र राज्य {2018} 7 एस 0 सी0 आर 0 767 - पर भरोसा किया गया।

न्यायालय का निर्णय पारित किया गया द्वारा

न्यायमूर्ति एमएम सुन्द्रेश

''क्या हेमलेट के साथ अन्याय नहीं किया गया था। कभी नहीं। अगर हेमलेट खुद से दूर हो गया और जब वह खुद गलत नहीं करता फिर हेमलेट गलत करता। ऐसा नहीं है हेमलेट इससे इनकार करता है। फिर यह कौन करता है? उसका पागलपन। यदि ऐसा नहीं है तो हेमलेट उस पक्ष का है जिसके साथ अन्याय हुआ। बेचारे हेमलेट का शत्रु उसका पागलपन है।''

विलियम शेक्सपीयर।
{स्त्रोत: हेमलेट डब्ल्यू0 एस 0 प्ले मंचन सं0 5 दृष्य सं0 2 पंक्ति सं0 245}

1. वह चोट जो कि मृत्यु कारित करते समय हेमलेट ने लॉर्टेस को दिया था। हेमलेट अपने पिता की मृत्यु का कारण बनने के लिये जिसकी उसने गलत पहचान के माध्यम से हत्या कर दी थी, अस्थायी पागलपन का तर्क लेता है। ऐसा अभिवचन करते समय वह स्वयं को उस कृत्य से अलग कर लेता है जैसे कि वह किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किया गया हो एवं परिणाम उसे भुगतना पड़ा। इस प्रकार वह अपराधी के वजाय पीड़ित की भॉति व्यवहार करने का निवेदन करता है। यद्यपि हेमलेट का कृत्य भा0 द 0 वि0 की धारा 300 के परिभाषा में आने वाले आपराधिक मानव वध का गठन करता है लेकिन विकृत चित्तता का कार्य उसे आकर्षित नहीं करेगा। उक्त पंक्तियों के माध्यम से शेक्सपीयर एक आदमी की पीड़ा को सामने ले आता है जिसे अपने विकृत चित्तता की अवस्था में किये गये कार्य को उचित ठहराना पड़ता है।

2. भारतीय दंड संहिता 1860 {जिसे आगे भा0 द 0 वि0 कहा जायेगा} की धारा 84 के अंतर्गत विकृत चित्तता का अभिवाक् लिया गया। अपीलकर्ता ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एस 0 जी0 मडगॉव, द्वितीय के आदेश की पुष्टि करते हुये गोवा स्थित बंबई हाईकोर्ट के डिविजन बेंच के दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील किया। चूँकि हम धारा 84 भा0 द 0 वि0 के प्रयोज्यता के मौलिक मुद्दे पर विचार कर रहे हैं एवं अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा ध्यानाकृष्ट किया गया। अतः हम इस मामले के मेरिट में जाने का प्रस्ताव नहीं करते।

3. हमने उच्चतम न्यायालय के विधिक सेवा समिति के नियुक्त वकील श्री आफताब अली खान को सुना।
धारा 84 भारतीय दंड संहिता 1860

''84, विकृत चित्त व्यक्ति के द्वारा किया गया कार्य - कोई बात अपराध नहीं है जो कि ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है जो कि उसे करते समय, विकृत चित्तता के कारण कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ है अथवा जो कुछ वह कर रहा है वह वह या तो गलत है या तो विधि के प्रतिकूल है।''

भा0 द 0 वि0 की धारा 84 केवल उस कृत्य को मान्यता देती है जिसे अपराध नहीं कहा जा सकता है। यह इन शब्दों से शुरू होता है ''कोई बात अपराध नहीं है''। उक्त शब्द इस प्रावधान के पीछे की मंशा के स्पष्ट संकेत हैं। इस तरह का कृत्य विकृत चित्त मस्तिष्क से होगा। अतः मस्तिष्क की विकृत चित्तता का अस्तित्व इस प्रावधान के लागू होने का अनिवार्य शर्त है और वह उस विस्तार तक होना चाहिये कि व्यक्ति अपने कार्य की प्रकृति को नहीं जानता हो। ऐसा व्यक्ति कृत्य के प्रकृति को जानने में असमर्थ है। इसी तरह, उसको यह समझ नहीं है कि उसके द्वारा किया गया कृत्य

गलत है अथवा विधि के प्रतिकूल है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि अस्वस्थ मस्तिष्क की वजह से हुयी अक्षमता का तत्व कार्य करते समय मौजूद होना आवश्यक है।

5. यह प्रावधान विकृत चित्त व्यक्ति के कार्य के विषय में बताता है। जैसा कि उपर कहा गया है यह असमर्थता के संबंध में अत्यंत व्यापक प्रावधान है। परीक्षण एक सामान्य प्रज्ञावान व्यक्ति के दृष्टिकोण से होता है। अतः केवल चिकित्सकीय पागलपन का अर्थ विकृत चित्तता नहीं कहा जा सकता। ऐसा भी हो सकता है जहॉ पर कि चिकित्सकीय पागलपन से जूझ रहा व्यक्ति ने एक कार्य किया हो जबकि विधिक विकृत चित्तता धारा 84 के प्रावधानों को आकर्षित करने हेतु आवश्यक है। व्यक्ति को कार्य की प्रकृति को समझने में अक्षम अथवा उसका कृत्य गलत है अथवा विधि के विपरित, समझने में अक्षम होना चाहिये।

6. उपरोक्त प्रावधान एक्टसनान रियम फेसिट निसि मेंस सिट रिया के सिद्धान्त पर आधारित है जिसका अर्थ है कि कोई कार्य तब तक दोषी नहीं होता जब तक कि उसे दूषिय आशय से नहीं किया गया हो। आपराधिक विधि का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि दोष होने के लिये दुराशय का होना आवश्यक है। एक विकृत चित्त मस्तिष्क का व्यक्ति जो कि अपने कार्य के परिणामों को समझने में अक्षम हो या यह नहीं जानता कि उसका कार्य सही है या गलत। हो सकता है उसे यह भी नहीं पता हो कि यह कृत्य उसने किया है अथवा नहीं। जब ऐसी स्थिति हो तब उसे सजा नहीं दिया जा सकता। उसके इस कृत्य को समाज के विरुद्ध मानसिक विद्रोह के रूप में नहीं कहा जा सकता और इसलिये उसपर आरोप लगाकर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। वह पीड़ित के रूप में मदद के लिये खड़ा व्यक्ति है। उसकी स्थिति एक बच्चे की तरह है जो कि अपने कार्यों एवं उसके परिणामों को नहीं जानता।

7. हम इसके लिये निम्न निर्णयों पर अनुसरण करते हुये भरोसा करते हैं।

सुरेन्द्र मिश्रा बनाम झारखण्ड राज्य {2011}11 एस 0 सी0 सी0 495

11. हमारे मत में एक व्यक्ति जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 84 के अंतर्गत विकृत चित्तता का बचाव लेना चाहते हुये अपने कृत्य के दायित्व से बरी होना चाहता है उसे यह साबित करना होगा कि वह विधिक विकृत चित्तता थी न कि चिकित्सकीय विकृत चित्तता। अभिव्यक्ति ''मस्तिष्क की विकृत चित्तता'' दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है और मुख्यतः इसे पागलपन के भॉति देखा जाता है लेकिन शब्द ''पागलपन'' अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग अर्थ रखता है एवं मानसिक अवदशा के स्तर के अनुरूप परिभाषित किया जाता है। हर व्यक्ति जो कि मानसिक रोग से पीड़ित है, को स्वतः आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति नहीं मिल जाती। मात्र यह तथ्य कि अभियुक्त अजीब था, चिड़चिड़ा था या उसका मस्तिष्क पूरी तरह से ठीक नहीं था अथवा उसका शारीरिक एवं मानसिक रोग इस तरह का था जिससे कि वह बौद्धिक रूप से कमजोर एवं उसकी भावनायें प्रभावित होती रही हैं या कुछ विशिष्ट असामान्य कृत्य करता था अथवा छोटे अंतरालों पर पागलपन का दौरा पड़ता था अथवा उसे मूर्छा आती थी तथा उसका असामान्य व्यवहार था अथवा उसका व्यवहार अजीब था, मात्र ही धारा 84 भा0 द 0 वि0 के प्रावधानों को आकृष्ट करने हेतु पर्याप्त नहीं है।

हरि सिंह गौंड बनाम मध्यप्रदेश राज्य {2008} 16 एस 0 सी0 सी0 109

''10ः''7 धारा 84 के अंतर्गत ऐसे मामलो में जिसमें भी विकृत चित्तता का आरोप है, के विधिक परीक्षण का सिद्धान्त प्रावधानित किया गया है। मस्तिष्क के विकृत चित्तता की कोई परिभाषा भा0 द 0 वि0 में नहीं दी गयी है। न्यायालयों ने हालांकि मुख्यतः उक्त अभिव्यक्ति को पागलपन के समान देखा है परन्तु शब्द पागलपन की स्वयं कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं दी गयी है। इस शब्द को विभिन्न मानसिक अवदशाओं के तरह परिभाषित किया गया है। अतः हर व्यक्ति जो कि मानसिक रूप से बीमार है, स्वतः आपराधिक दायित्व से बचाव नहीं पा सकता। विधिक पागलपन एवं चिकित्सकीय पागलपन के मध्य सुस्पष्ट अंतर बनाया गया है। न्यायालय विधिक पागलपन को विचार में लेती है न कि चिकित्सकीय पागलपन को।

बापू उर्फ गजराज सिंह बनाम राजस्थान राज्य 2007 8 एस 0 सी0 सी0 66

''10ः10'' धारा 84 में आपराधिक विधि का आधारभूत मेक्सिम एक्टसनान रियम फेसिट निसि मेंस सिट रिया {कोई कार्य तब तक दूषित नहीं होता जब तक कि वह दूषित आशय से न किया गया हो} अपराध गठित करने के क्रम में आशय एवं कृत्य दोनों होना आवश्यक है परन्तु पागल व्यक्तियों की दशा में आपराधिक मस्तिष्क न होने के कारण उनकी कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं होती {फ्यूरियस इस नल्ला वालण्टस ईस्ट}

''11'' यह धारा स्वतः यह कहती है कि इस धारा का बचाव तभी प्राप्त होगा जबकि यह साबित कर दिया जाये कि कार्य करते समय अभियुक्त व्यक्ति मानसिक रोग के कारण यह जानने में अक्षम था कि कार्य की प्रकृति एवं कृत्य के गुण अथवा यहॉ तक कि वह यह भी नहीं जानता था कि उसका कृत्य गलत है अथवा विधि के प्रतिकूल है तभी उक्त धारा लागू होगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस धारा का लाभ दिया जाना चाहिये अथवा नहीं, के अवधारण में अपराध घटित होने का समय महत्वपूर्ण है। निष्कर्ष के तौर पर हम पाते हैं कि सुसंगत परिस्थितियों को दृष्टिगत लिया जाता है। पागलपन का बचाव मात्र अपराध के विशेषताओं में लिया जाना खतरनाक होगा। मात्र मस्तिष्क की विकृत चित्तता जो कि मस्तिष्क की संज्ञानात्मक क्षमता को प्राकृतिक रूप से खराब कर दिया हो, ही आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति का आधार हो सकती है। स्टीफेन ने इंग्लैण्ड के आपराधिक विधि का इतिहास वाल्यूम 2 पेज 166 में यह संप्रेक्षित किया है कि यदि एक व्यक्ति किसी सोते हुये व्यक्ति का गर्दन केवल इस कारण काट दे कि जब वह सो कर उठेगा तो उसे देखकर बड़ा मजा आयेगा। वास्तव में यह एक ऐसा मामला था जहॉ कृत्य करने वाला अपने कार्य के भौतिक परिणामों को समझने में अक्षम था। विधि कुछ और मान्यता प्रदान नहीं करती बल्कि कार्य की प्रकृति को समझने की अक्षमता तथा जहॉ एक व्यक्ति का दीमाग अथवा उसका तार्किकता पर्याप्त रूप से समाप्त हो चुका हो कि वह क्या कर रहा है तो यह समझा जायेगा कि उसने परिणाम के आशयित होकर कार्य किया।
भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा-105
'' 105. सबूत का भार अभियुक्त पर की उसका मामला अपवादो के अन्तर्गत आता है-
जबकि कोई व्यक्ति इसी अपराध का अभियुक्त है तब उन परिस्थितियों के अस्तित्व को साबित करने का भार जो उस मामले को भा0 द 0 वि0 की संहिता 1860 के साधारण अपवादों में से किसी के अन्तर्गत या उसी संहिता के किसी अन्य भाग में, या उस अपराध की परिभाषा करने वाली किसी विधि में, अन्तर्विष्ट किसी विशेष अपवाद या परन्तुक के अन्तर्गत कर देती हैं, उस व्यक्ति पर है और न्यायालय ऐसी परिस्थितियों के अभाव की उपधारण करेगा।
8 सबूत का भार अभियुक्त पर होगा की वह न्यायालय को संतुष्ट करें कि वह विधि द्वारा निषिध्द कार्य करते समय पागल था। ऐसा भार प्रथम दृष्टिया मामले से संबंधित युक्त-युक्त सामग्री उपस्थापित करने के पश्चात उनमोचित हो जाता है। यही वजह है कि एक मानसिक रूप से अस्वस्थ्य व्यक्ति से यह उम्मीद नहीं की जाती कि वह अपने पागलपन को युक्त-युक्त संदेह के परे साबित करें। द्वितीयतः, यह कि यह संबंधित व्यक्ति न्यायालय एवं अभियोजन की सामुहिक जिम्मेवारी है कि पागलपन के सबुत को विरोधी की तरह ना होकर सहयोगात्मक तरीके से पढ़े। यदपि एक व्यक्ति को स्वस्थ्य मस्तिष्क वाला समझा जाता है परन्तु ज्यों ही उचित सामग्री न्यायालय के समक्ष उपलब्ध होती है, उपधारणा समाप्त हो जाती है।
9. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-105 जो साबित करने का भार डालती है, का अपवाद है। यदपि सामान्य सिद्वान्त के तौर पर सबूत का भार अभियुक्त व्यक्ति पर होता है कि वह अपने मामले को साधारण अपवाद अध्याय के अन्तर्गत धारा-84 भा0 द 0 वि0 में लाए। इसमंे सम्भावनाओं की अधिसम्भाव्यता का नियम लागू होता है। उक्त प्रावधान को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-8 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। उक्त प्रावधान को लागू करने के लिए पूर्ववर्ती, कार्य के दौरान तथा पश्चातवर्ती आचरण को देखा जाना होगा।
10. चंूकि धारा -84 भा0 द 0 वि0 का अपना महत्वपूर्ण उदेश्य है। अतः अभियोजन एवं न्यायालय को अपनी अलग-अलग भूमिका निभानी है। एजेन्सी को अस्वस्थ्ता का दावा करने वाले व्यक्ति की ओर से प्रस्तुत सामग्री की जॉच करनी होती है एवं इस बात से संतुष्ट करना होगा कि मामला धारा-84 भा0 द 0 वि0 के दायरे में नहीं आता है।
11. न्यायालय को अपनी ओर से खुद को संतुष्ट करना होगा कि व्यक्ति के द्वारा किया गया कार्य कठोर अर्थो में धारा-84 भा0 द 0 वि0 में वर्णित बिकृत चित्तता के दायरे में आता हैं।
12. यहॉ हम दयाभाई छगनभाई ठककर बनाम गुजरात राज्य (ए 0 आ 0 आर 0 1964 एस 0 सी0 1563) में न्यायालय द्वारा पारित महत्वपूर्ण विनिश्चय पर भरोसा करते है। जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया किः
''(7) सबूत के भार का सिद्वान्त पागलपन के तर्क के संबंध में निम्नलिखित दिशा-निर्देश दिये गये।

(1) अभियोजन को युक्त-युक्त संदेह के परे यह साबित करना पड़ेगा कि अभियुक्त ने अपराध को दुराशय के साथ कारित किया है और यह भार सदैव अभियोजन पर होगा विचारण के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक।
(2) यह उपधारणा खण्डनीय होगी की अभियुक्त पागल नहीं था। जबकि उसने अपराधकारित किया है। भा0 द 0 वि0 धारा-84 की अर्थो में अभियुक्त उपधारणों को न्यायालय के समक्ष मौखिक, दस्तावेजी, परिस्थिति जन्य साक्ष्यो के माध्यम से खण्डित कर सकता है। परन्तु उसके उपर सबुत का जो भार 12 होगा वह सिविल मामलों में पक्षकारों पर आरोपित भार से ज्यादा अधिक नहीं होगा।
(3) भले ही अभियुक्त यह निश्चायक रूप से स्थापित करने में सक्षम ना हो कि अपराध करते समय वह पागल था, अभियुक्त या अभियोजन पक्ष की ओर से न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य अपराध को गठित करने वाले एक या अधिक आवश्यक तत्वों के सम्बन्ध में न्यायालय को उचित संदेह पैदा कर सकता है तथा उस मामले मंे न्यायालय इसी आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त करने का हकदार होगा कि अभियोजन पर सबूत का भार था जिसने उसका निर्वहन नहीं किया।
(13) बापू (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय में यह अभिनिर्धारित किया किः-
8. मस्तिष्क की बिकृतचित्ता को साबित करने का भार अभियुक्त पर है लेकिन जहॉ अन्वेषण के दौरान पागलपन का पूर्ववृत का खुलासा होता है वहॉ एक ईमानदार अन्वेषक का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त की चिकित्सीय जॉच करवाये एवं साक्ष्यों को न्यायालय के समक्ष रखे। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो यह अभियोजन के मामले में गम्भीर संदेह उत्पन्न करता है तथा संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाना चाहिए। हालांकि अपराध से कुछ समय पहले एवं अपराध के दौरान अथवा तत्काल पश्चातवर्ती आचरण के सम्बन्ध में साक्ष्य प्रस्तुत करके उसके मानसिक दशा के बारे में साक्ष्य प्रस्तुत करके दायित्व से मुक्त किया जाना चाहिए।
(12) मात्र मन की असामान्यता या आंशिक विभ्रम, अप्रतिरोध्य आवेग अथवा मनोरोगी का बाध्यकारी व्यवहार धारा-84 के अन्तर्गत कोई बचाव प्रदान नहीं करता है। धारा-84 के प्रावधान मूल्यताः वही है जो कि हाउस ऑफ लॉर्डस द्वारा मैक्नाटन मामले (1843) 4 ैज ज्त् छै 847 ;भ्स्द्ध मामले में न्यायाधीशों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में दिये गये व्यवहार पूर्ववर्ती आचरण घटना के समय तथा घटना के पश्चातवर्ती आचरण व्यक्ति के मानसिक स्थिति का पता लगाने के संबंध में सुसंगत हो सकते है। लेकिन घटना के बहूत पश्चात का नहीं। यदपि अपराधी के अपराध करते समय या अपराध के तत्काल पश्चात के आचरण इस संबंध में थोड़ा संकेत प्रस्तुत करते है। पागल व्यक्ति के पागलपन में अन्तराल की अवधि केवल उसके हिसंक विकार के लक्षणों के समाप्ती नहीं है बल्कि उसके संज्ञानात्मक क्षमता का पुर्नस्थापन है की वह अपने कार्यो के संबंध में सही तरीके से निर्णय ले सके। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मानसिक प्रक्रियाओं का पूरी तरह से मूल रूप में पुर्नस्थापन हो सके। संबंधित व्यक्ति ऐसा कृत्य ऐसे कारण, स्मृति तथा निर्णय के साथ कर सकता है कि उसको विधिक कार्य बनाया जा सके। परन्तु मात्र हिसंक विकारीय लक्षणों पर रोक होना मात्र प्रर्याप्त नहीं है।
(14) इस न्यायालय ने हाल ही में देवी दास लोक राठौर बनाम महाराष्ट्र राज्य (2018) 7 ैब्ब् 718 के मामले में पारित निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि भा0 द 0 वि0 की धारा-484 एक अपवाद प्रस्तुत करती है एक कृत्य अपराध नहीं होगा। यदि वह किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया जाता है जो उसे करते समय मस्तिष्क की बिकृतचितता के कारण कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ है या वह क्या कर रहा है या तो गलत है या विधि के प्रतिकूल है। धारा-105 साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत अभियुक्त पर सबूत का भार उतना कठोर नहीं है जितना की अभियोजन पर अपने मामले को युक्त-युक्त संदेह के परे साबित करने का है। अभियुक्त को अपने बचाव में केवल सम्भावनाओं की अधिसम्भावता स्थापित करना होगा। जैसा कि सुरेन्द्र मिश्रा बनाम झारखण्ड राज्य ;2011 द्ध 11 ैब्ब् 495 रू ;2011 द्ध 3 ैब्ब् ;ब्तपद्ध 232 ए जिसके बाद साबित करने का भार अभियोजन पर होगा कि मामला में साधारण अपवाद लागू नहीं होगे। परीक्षण का मानक विधिक पागलपन होगा ना कि चिकित्सीय पागलपन जैसा कि राजस्थान राज्य बनाम शेरा राम ;2012 द्ध 1 ैब्ब् 602 रू ;2012 द्ध 1 ैब्ब् ;ब्तपद्ध 406 (शेरा राम, एस 0 सी0 सी0 पेज सं0-614, पारा-19) के अनुसार
’’19 एक बार जब व्यक्ति को मानसिक विकार या मानसिक कमी से पीड़ित पाया जाता है तो उचित वृतचित्र के माध्यम से सभी सुसंगत समय पर मतिभ्रम, मनोभ्रंश, स्मृतिक्षीणता और आत्म नियंत्रण के दायरे में आता है तो ऐसा व्यक्ति अपराधिक दायित्व से बचाव हेतु सामान्य अपवादों का सहारा लेने का हकदार होगा।
(12) मस्तिष्क की विकृतचितता के बचाव याचिका के सुनवाई में समय अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दू है जबकि अपराधकारित किया गया था तब अभियुक्त की मानसिक स्थिति कैसी थी। जिसे पूर्ववर्ती करते समय तथा अपराध के

पश्चात आचरण के प्रमाण से देखा जाता है। जैसा कि रतन लाल बनाम मध्यप्रदेश राज्य ;1970 द्ध 3 ैब्ब् 533 रू 1971 ैब्ब् ;ब्तपद्ध 139 (एस 0 सी0 सी0 पेज सं0-533-34, पारा-2)

''2 अब यह अच्छी तरह से सुस्थापित है कि जिस महत्वपूर्ण समय पर मस्तिष्क की अस्वस्थ्यता स्थापित की जानी चाहिए वह है कि जब वह अपराधकारित किया गया तथा सबूत का भार अभियुक्त पर है। दयाभाई छगनभाई ठककर बनाम गुजरात राज्य (ए 0 आ 0 आर 0 1964 एस 0 सी0 1563) यह निर्णित किया गया कि यह खण्डनीय उपधारणा है कि अपराधकारित करते समय अभियुक्त व्यक्ति पागल नहीं था। जैसा कि दण्ड संहिता की धारा-84 में वर्णित है। अभियुक्त न्यायालय के समक्ष सुसंगत मौखिक ओरल, दस्तावेजी एवं परिस्थिति जन्य साक्ष्यों के माध्यम से खण्डन कर सकता है तथा सबूत का भार उतना कठोर नहीं है जितना की सिविल मामले में पक्षकारों पर होता है।

13. यदि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से अभियुक्त की मानसिक दशा के सम्बन्ध में यह युक्त-युक्त संदेह उत्पन्न होता है कि वह कार्य करते समय उसकी मानसिक दशा कैसी थी। ऐसी दशा में वह दोषमुक्ति का हकदार होगा जैसा कि विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;1990 द्ध 3 ैब्ब् 190 रू 1990 ैब्ब् ;ब्तपद्ध 378 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 का अध्याय 25

15. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 का अध्याय 25 यदपि प्रक्रियात्मक प्रकृत की है परन्तु जब यह विकृतचितता अभियुक्तों के सम्बन्ध में प्रावधान करती है तो यह सारवाण हो जाती है। द 0 प्र 0 सं0 की धारा-328 से 339 तक सोस्थापित प्रक्रिया के संबंध में उल्लेखित किया गया है। धारा-329 के अन्तर्गत आवेदन की भी आवश्यकता नहीं है की कोई व्यक्ति जो कि अभियुक्त है। वह विचारण का सामना करने के लिए पर्याप्त स्वास्थ्य मस्तिष्क का है अथवा नहीं। यह न्यायालय का बाध्यकारी कर्तव्य है। धारा-330 के अन्तर्गत न्यायालय ऐसे व्यक्ति को आरोप से उन्मोचित भी कर सकती है। यदि सुधार की कठिन सम्भावना के साथ उस व्यक्ति की विचारण का सामना करने की असमर्थता बरकरार रहती है। धारा-334 के अनुसार न्यायालय के निर्णय में यह विशिष्ट निष्कर्ष शामिल होगा कि उक्त कृत्य मस्तिष्क के विकृतचितता के कारण किया गया था। इसका सामान्य कारण यह है कि बिकृतचितता के आधार पर कोई दोषमुक्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक की वह कृत्य वास्तविक रूप से ना की गई हो।

16. प्रावधानों में समस्त विचार एक अस्वस्थ्य दिमाग वाले व्यक्ति को विचारण का सामना करने से सुविधा प्रदान करना है। ना केवल उसकी तर्कक्षमता के कारण बल्कि उसे निःशक्त के रूप में भी मानना है। न्यायालय की भूमिका उपचारात्मक उपायों का पता लगाने एवं पूर्ण न्याय करने की है।

17. बर्ष 2009 में जोड़े गये आवश्यक संशोधनों सहित द 0 प्र 0 सं0 की अध्याय-25 में वर्णित क्षेत्र एवं उददेश्य को देखने से यह तथ्य सामना आता है कि भा0 द 0 वि0 की धारा-84 के तहत मामले का विचार करते समय न्यायालय को बड़ी भूमिका का निर्वहन करना है। यदि विचारण के दौरान मित्रवत दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता होती है तो न्यायालय को अभियुक्त की विकृतचितता के आधार पर उसे आरोप से उनमोचित किये जाने की भी उचित शक्ति प्रदान की गई हैं।

18. हम विधिक एवं चिकित्सीय पागलपन के निर्धारण एवं मूल्यांकन पर पर्याप्त सामग्री पाते है। जो कि एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न है। हम चिकित्सा न्याय शास्त्र पर निम्नलिखित सुसंगत सामग्री प्रस्तुत करेगें:-

जयसिंह पी0 मोदी, चिकित्सा न्याय शास्त्र एवं विषविज्ञान पर एक पाठयपुस्तक 26 वां संस्करण 2018 पृष्ट सं0-938

'' मानसिक बिमारी की पुष्टि: नैदानिक मूल्यांकन तथा जिन प्रश्नों को सम्बोधित करने की आवश्यकता होगी:-

फौरेन्सिक मनोचिकित्सा न्यायालय का यह निर्धारण करने में मदद करने का प्रयास करती है कि क्या एक व्यक्ति का अपराधकारित करने आशय हो सकता है तथा क्या वह विचारण का सामना करने के लिए उचित स्थिती में है। मानसिक पागलनपन एवं चिकित्सीय पागलपन अनिवार्य रूप से सहचर्य नहीं है। एक मानसिक बिमारी जिसके लिए संस्थागत देखरेख की आवश्यकता होती है। अथवा चिकित्सीय पागलपन के लिए नैदानिक देखरेख की जरूरत होती है। जो कि अपराधिक कार्य के परिणामों और दण्ड को भुगतने का हकदार है। जब तक कि वह विधिक तौर पर पागल नहीं हैं। धारा-84 के अन्तर्गत साधारण अपवादों का बचाव पाने के लिए यह देखना है कि क्या अभियुक्त मानसिक रूप से विकृतचितता है। क्या विकृतचितता इस तरह की है कि वह यह जानने में असमर्थ है कि ;पद्ध कार्य की प्रकृति अथवा ;पपद्ध कार्य गलत है अथवा ;पपपद्ध विधि के विपरित है? यह प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से विधिक परीक्षण हेतु आवश्यक है। क्या वह न्यायालय के कार्यवाही को समझने में सक्षम है और विचारण का सामना करता है? यह आवश्यक है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि उसमें पर्याप्त योग्यता है कि सम्यक विचारण तथा बचाव हेतु वह अपने अधिवक्ता से परामर्श कर सके। हर अभियुक्त यह जानने के लिए बाध्य है कि उसके बिरूद्ध जो कार्यवाही की जा रही है वह उसके प्रकृति को समझे। अभियुक्त की मानसिक दशा क्या थी, अपराध कब घटित हुई? क्या अभियुक्त मानसिक बिमारी का बहाना बना

रहा है? अपराधिक दायित्व का निर्धारण करते समय इनका उत्तर देखा जाना चाहिए। विचारण के पश्चात देखरेख सबाल उठा सकते है जैसे मानसिक बिमारी के ठीक होने का निदान क्या है? क्या वह खतरनाक होगा? अनेक विदेशी क्षेत्राधिकारों में प्रश्नों की प्रकृति पागलपन के प्रकृति के सबूत पर परिवर्तनीय होगी। क्या जिस कार्य के लिए उसे आरोपित किया गया है को अप्रतिरोध्य आवेग के कारण हुआ? क्या उसकी मानसिक दशा इस तरह की थी कि वह अपने व्यवहार नियंत्रीत करने में अक्षम था? क्या वह किसी मतिभ्रम के शिकार में था कि उसे कोई व्यक्तिगत क्षति की जा रही है?

मूल्यांकन प्रक्रियाः-

मूल्यांकन प्रक्रिया में सामान्य तौर पर तीन प्रमुख घटक या स्त्रोत शामिल है (क) अभियुक्त के साथ एक साक्षात्कार (ख) फौरेन्सिक मूल्यांकन उपकरण तथा (ग) तीसरे पक्ष की जानकारी जिसमें सांपार्श्विक रिपोर्ट शामिल है, गवाहों के बयान, पीड़ित का कथन, पुलिस रिपोर्ट एवं अन्य विभिन्न प्रकार के रिपोर्ट (जिसमें मानसिक स्वास्थ्य, उपचार, स्कूल, चिकित्सा, अपराध स्थल आदि) सहित इन स्त्रोतो के साथ अपराधिक दायित्व में विभ्रम की भूमिका का मूल्यांकन (अभियुक्त के मतिभ्रमता के गुण एवं प्रकृति की भॉति) अपराधकारित करते समय की मानसिक स्थिति के निर्धारण में केन्द्रीय भूमिका में होते है। विशेषतः ऐसे मामलो में जिसमें प्रतिरोध किया जा रहा हो। विशेषज्ञ की भूमिका वर्तमान विधिक निष्कर्ष के बारे में नहीं होती अथवा औपचारिक मनोविज्ञानिक निदान के बारे में नहीं होती अपितू परीक्षक की भूमिका एक विशेषज्ञ के तौर पर विभिन्न कलात्मक/विज्ञानिक ज्ञान तथा उसके संबंध मंे व्यवहारिक संज्ञानात्मक अवधारात्मक तथा निर्णयात्मक क्षमताओं को उनके कानूनी/ नैतिक निर्णय प्रक्रिया के संबंध में होती है।

सिजोफ्रेनिया-

19. अब हम मानसिक बिमारी जो कि सिजोफ्रेनिया के कारण होती है, पर आयेगे हम उक्त मुददे में नहीं जाना चाहते है क्योंकि यह विशेषज्ञों के विशिष्ट ज्ञान के क्षेत्र में आता है सिवाय प्रासंगिक उद्धरण के -

जयसिंह पी0 मोदी, चिकित्सा न्याय शास्त्र एवं विषविज्ञान पर एक पाठयपुस्तक 26 वां संस्करण 2018 पृष्ट सं0-922

श्;पपद्ध सिजोफ्रेनियाः- क्रेपलिन (एमील क्रेपलिन, जर्मन मनोचिकित्सक) ने 1896 में डायमेंशिया प्रीकौक्स नाम की बिमारी, 1911 में योजन ब्लूलर (पालयोजेन ब्लूलर, स्वीस मनोचिकित्सक और यूजेनिष्ट) ने सिजोफ्रेनिया शब्द की शुरूआत की जिसका शाब्दिक अर्थ होता है मस्तिष्क का विघटन शब्द डायमेंशिया प्रीकौक्स को बदल दिया गया क्योंकि उक्त बिमारी सदैव डायमेंशिया पर समाप्त होती थी जो ऐसा नहीं था। शब्द प्रीकौक्स मतलब की यह रोग युवास्था किशोरवस्था के समय विकसित हुआ परन्तु कई मामले उस अवध के बाद विकसित हुए। चूॅकि उस समय तक यह सोचा जाता था यह बिमारी हमेशा मनोभ्रंश पर समाप्त होती है जिसका मतलब एक निराशाजनक पूर्वाअनुमान था जिसने लोगो के मन में निराशा उत्पन्न किया।

एलिजाबेथ ए 0 मार्टिन (2007) '' ऑक्सफोर्ड संक्षिप्त चिकित्सा

शब्दकोश (7 वॉ संस्करण) '', पृष्ठ 642

सिजोफ्रेनिया एन 0 एक गंभीर मानसिक बीमारी जिसका लक्षण है कि सोचने की प्रक्रिया, वास्ताविकता के साथ संपर्क और भावनात्मक प्रक्रिया के विघटन। साकारात्मक लक्षण जैसे की भ्रम एवं मतिभ्रम (विशेष रूप से आवाजो में) मंे आम है और कोई भी श्नाईडेरियन प्रथम श्रेणी के लक्षण विशेष रूप से बिमारी का संकेत देते है। नकारात्मक लक्षणों में सामाजिक वापसी, अहंकार की सीमाओं में कमी और उर्जा एवं पहल की हानि शामिल है सिजोफ्रेनिया डायग्नोस होती है जबकि ऐसे लक्षण कम से कम एक माह तक मौजूद रहते है। बिमारी तत्काल खत्म भी हो सकती है या कुछ अवधि तक कभी-कभी या बार-बार पुनरावृति के साथ रह सकती है अथवा गम्भीर हो सकती है। ऐसे निदान एंटीसाईकोटिक दवाओं तथा मनोविज्ञानिक एवं सामाजिक प्रबंधन एवं पुनर्वासन है। इसके कई कारण है जिसमें अनुवांशिक, कारण पर्यावरणीय तनाव तथा अवैध दवाएॅ शामिल है।

अमेरिकन मनोचिकित्सा संघ 2013, डायग्नोस्टिक एवं इस्टेटीकल मैनुएल ऑफ मेन्टल डिस्ऑर्डरः डी0 एस 0 एम 0 - 5, पंचम संस्करण, अमेरिकन मनोचिकित्सा संघ वाशिंगटन डी0 सी0, पेज नं0-87

''सिजोफ्रेनिया स्पेक्ट्रम और अन्य मनोवैज्ञानिक विकारों में सिजोफ्रेनिया, अन्य मनोवैज्ञानिक विकार और सिजोटाईपल (व्यक्तित्व) विकार शामिल है। वे निम्न पॉच असामान्यताओं में से एक या अधिक के तौर पर परिभाषित किए गए हैं- भ्रम, मतिभ्रम अव्यवस्थित सोच (भाषण), अत्याधिक अव्यस्थित या असामान्य मोटर व्यवहार (कैटाटोनिया सहित) तथा नकारात्मक लक्षण।

20. इस प्रकार हम इस बात की प्रशंसा करते है कि सिजोफ्रेनिया निश्चित रूप से एक अत्याधिक शक्तिशाली मानसिक बिमारी है।

तथ्य एवं विश्लेषणः-

21. अभियोजन का मामला यह है कि अपीलार्थी ने मृतक के उपर उस दूकान पर हमला किया जिसमें वह काम कर रहा था जो कि उसके दादा के भाई का था जिनसे कोई समस्या नहीं थी। उसका कोई प्रयोजन नहीं था और स्पष्ट रूप से यह बताया गया कि उसने मृतक पर बिना किसी उकसावे एवं पूर्ण चिन्तन के लोहे की ताला प्लेट से हमला किया। यह घटना 14/05/2004 को सुबह 6ः00 बजे हुई। जिसे पी0 डब्लू-2 ने देखा वह महत्वपूर्ण सामान ले गया और दूकान से बाहर आया तथा बस स्टैण्ड पर चला गया। इसके बाद दूकान पर वापस आया और उसे वही छोड़ दिया। वह एक बार फिर से बस स्टैण्ड पर चला गया और एक कुर्सी पर बैठा हुआ था। वह न तो उक्त स्थान से दूर चला गया और न ही जाने का कोई प्रयास किया।

22. हरियाणा राज्य में स्थित जी0 एम 0 सी0 हॉस्पीटल भिवानी, में घटना से पूर्व उसका ईलाज किया गया था। वह 17/11/2003 से 26/11/2003 तक वहा ईलाजरत था। वह एंजाईटी न्युरोसिस्ट एवं एसीड पेप्टीक बिमारी के साथ ही हाईपरटेंशन से ग्रसित था। उसका ईलाज सिजोफ्रेनिया के भॉति किया गया तथा उसे ''थियोरिल'' दवा दिया गया।

23. सत्र न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की ओर से द 0 प्र 0 सं0 की धारा- 329 के तहत एक आवेदन दायर किया गया। जमानत के आवेदन पर विचार करते समय भी न्यायालय ने यह नोटिस किया कि अपीलार्थी कार्रवाही को समझने में अक्षम है। दो डॉक्टर ए 0 डब्लू-1 एवं ए 0 डब्लू-2 का परीक्षण किया गया इस बात के लिए कि वह सिजोफ्रेनिया से वास्तव में पीडित थे। ए 0 डबलू -2 का परीक्षण यह देखने के लिए किया गया कि पूर्व मंे वह जी0 एम 0 सी0 हॉस्पीटल भिवानी में उपचार ले रहा था। डॉक्टर ए 0 डब्लू-1 जो कि विचारण न्यायालय के आदेश पर घटना के पश्चात उसकी जॉच किया। जिसने कहा कि वह क्रोनिक सिजोफ्रेनिया से ग्रसित थे। बाद में उसका डी0 डब्लू-1 के तौर पर परीक्षण किया गया उसमें पुनः गवाही मंे कहा तथा अपने द्वारा जारी किये गये प्रमाण पत्र के अनुरूप यह स्पष्ट बयान दिया कि वह सिजोफ्रेनिया के बिमारी से पीड़ित थे तथा यह 14-15 साल की उम्र से ही होना चाहिए। यह तथ्य कि वह अपने द्वारा किये गये कार्य को समझने में असमर्थ तथा उसके पश्चातवर्ती आचरण को दृष्टिगत किया गया है। पहला प्रमाण पत्र जारी करते समय उस सरकारी डॉक्टर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अपीलार्थी मुकदमें का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से फिट नहीं था जबकि उसने उसे रोगी के रूप में मारने के बाद एक अप्रमाण पत्र दिया की उसके बाद वह विचारण का सामना कर सकता है।

24. सत्र न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर दोषसिद्वी प्रदान किया। बिकृतचितता का बचाव भी लिया गया था। तदअनुसार उसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि पी0 डब्लू-6, जो कि अपीलार्थी के दादा के भाई है को कोई असामान्यता नहीं मिली थी तथा उनके माँ की गवाही नहीं ली गई। इसके अलावा बतौर डॉक्टर पी0 डब्लू-10 जिसने की घटना के पश्चात अभियुक्त की शारीरिक जॉच की थी, ने बताया कि अभियुक्त मानसिक रूप से स्वस्थ्य था।

25. हालांकि ए 0 डब्लू-1 एवं डी0 डब्लू-1 के तौर पर गवाही देने वाले सरकारी डॉक्टर के साक्ष्य को दर किनार कर दिया गया। अतः साथ ही डी0 डब्लू-2 के साक्ष्य को भी दर किनार कर दिया गया। जो कि अभियुक्त के चाचा थे और जिन्होने स्पष्ट रूप से अभियुक्त द्वारा प्राप्त पहले के उपचार के सम्बन्ध में बताया। ए 0 डब्लू-2 के साक्ष्य को भी ध्यान में नहीं रखा गया।

26. इस न्यायालय के सामने जिला एवं सत्र न्यायाधीश, भिवानी से दवा प्रीसक्रिप्सन और अन्य दस्तावेज की मांग की गई जो कि समझा नहीं जा सका तथा पूर्व मंे किये गये उपचार पर कोई चर्चा नहीं हुई। हमारे दृष्टिकोण में यदि ए 0 डब्लू-2 का साक्ष्य जिसे हमारे समक्ष प्रस्तुत किये गये अभिलेखो से समझा जा सकता था, न्यायालय के द्वारा विचार में लाया गया होता तो उपरोक्त मेहनत की आवश्यकता नहीं होती। रिपोर्ट में कहा गया था कि इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती है की अपीलार्थी सिजोफ्रेनिया से पीड़ित था। हम यह नोट कर सकते है कि डॉक्टरों के बयान घटना के 16 साल बाद दर्ज किये गये। वास्तव में उन्होने अपीलार्थी को दिये गये उपचार की प्रकृति को याद रखना भी मुश्किल पाया था। किसी भी मामले में यह ऐसा सामग्री है जो कि वास्तव में अपीलार्थी के पक्ष में जायेगी क्योंकि उपचार का तथ्य निर्विवादित है। विशेषतः तब जबकि उक्त तथ्य को ए 0 डब्लू-2 के साक्ष्य द्वारा एक से अधिक जगहों पर सम्पुष्ट किया गया था।

27. हम यह भी जोर सकते है कि यह रिपोर्ट केवल उन डॉक्टरों के बयान का अभिलेख है जिनका परीक्षण न्यायालय के द्वारा नहीं किया गया था। जैसे डी0 डब्लू-1 के रूप में सरकारी डॉक्टर के गवाही में जो प्रतिपरीक्षण किया गया था को स्वीकृत किया जाना चाहिए। केवल यह तथ्य की अपीलार्थी बाद में मुकदमा का सामना करने के योग्य हो गया पर्याप्त है कि दोषमुक्ति का आदेश पारित किया जाए क्योंकि यह उसके पूर्व पागलपन का संकेत है। हम यह महसूस करते है कि

विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय दोनों कार्य की प्रकृति से प्रभावित थे। जबकि अपीलार्थी की दशा को अनदेखी करते हुए इसका भार अभियुक्त पर डाला गया। हमें यह भी सूचित किया गया है कि अपीलार्थी पूरी तरह से ठीक हो गया हैं और समाज में अच्छी तरह से मिलकर रह रहा है।

28. उपरोक्त कारणों से हम आवेदक के बिरूद्व दोषसिद्वी के आदेश को आगे के लिए जारी रखे की इजाजत देने में अक्षम है जो कि निश्चित रूप से भा0 द 0 वि0 की धारा-84 में उपबंधित प्रावधानों के लाभ का हकदार है।

29. विचारण न्यायालय के द्वारा दिनांक-25/07/2006 को पारित धारा-302 भा0 द 0 वि0 के अन्तर्गत अपीलार्थी के बिरूद्व दोषसिद्वी एवं दण्डादेश तथा उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक-02/06/2008 को पारित निर्णय एवं आदेश जिसके द्वारा उक्त सजा को सम्पूष्ट किया गया था, को खारिज किया जाता है।

30. अपीलार्थी को सभी आरोपो से दोषमुक्त किया जाता है तथा उसके बंध-पत्र को उनमोचित किया जाता है लम्बित आवेदन यदि कोई हो, समाप्त समझा जायेगा।

अपील स्वीकृत

Sri Vivek Kumar Mishra
Sub-Judge-II-cum-ACJM-II, Patna City